सांख्य दर्शन में बंधन एवं मोक्ष

अन्य भारतीय दर्शनों के समान सांख्य दर्शन भी इस संसार में जीवन को दुःखदायी मानता है। विशेषकर बौद्ध दर्शन के समान वह भी मनुष्य के दुःखों के कारण पर गहन चिंतन करता है। व्याधि, बुढ़ापा एवं मृत्यु इत्यादि दुःखों से त्रस्त है। इस प्रकार से सांख्य दर्शन भी विश्व में व्याप्त दुःखों एवं कष्टों से मुक्ति हेतु उस ज्ञान को लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रस्तुत करता है, जो इसका समूल नाश कर सके। अतः मोक्ष (कैवल्य) की प्राप्ति एकमात्र विवेक ज्ञान से ही संभव है। यही हमें बंधनों से पूर्ण मुक्ति दिला सकता है।

सांख्य दर्शन के अनुसार दुःख तीन प्रकार का होता है -

(i) आध्यात्मिक दुःख → (व्यक्तिगत) :→ मनुष्य को होने वाले शारीरिक एवं मानसिक दुःख आध्यात्मिक दुःख कहे जाते हैं। शारीरिक दुःखों की उत्पत्ति वात, पित्त और कफ के कारण होता है। इसलिए शारीरिक दुःख त्रिदोषजन्य दुःख कहलाते हैं। मानसिक दुःखों की उत्पत्ति काम, क्रोध आदि मनोविकारों के कारण होती है।

(ii) आधिभौतिक दुःख (वस्तुगत) → इस संसार में मनुष्य को बाह्य वस्तुओं के कारण भी अनेक दुःख उठाना पड़ता है। कभी अचानक साँप काट लेता है, तो कभी बिच्छु डंक मार देता है, कभी पैर में काँटा गड़ जाता है तो कभी कुछ भूमि में तलवार की धार सहनी पड़ती है। इस प्रकार के दुःख आधिभौतिक दुःख कहलाता है।

(iii) आधिदैविक दुःख (देवताओं से सम्बंधित) :→ कभी-कभी भूत-प्रेत आदि के कारण भी हमें कष्ट उठाने पड़ते हैं। कुछ दैविक शक्तियाँ भी हमें दुःख पहुँचाती हैं। ऐसे दुःख आधिदैविक कहे जाते हैं। जैसे - ग्रह, नक्षत्र, भूत-प्रेत आदि द्वारा उत्पन्न दुःख।

सांख्य इन्हीं सब दुःखों से मुक्ति हेतु विवेक ज्ञान आवश्यक बतलाता है। बंधन की अवस्था में व्यक्ति इन्हीं दुःखों से

पीड़ित रहता है।

पुरुष शुद्ध चैतन्य है। वह वास्तव में कभी बंधनग्रस्त नहीं होता। उसे स्वयं दुःख नहीं होता। अज्ञानवश जब वह स्वयं को प्रकृति एवं इसके विकारों से अभिन्न मान लेता है, तब प्रकृति के दुःखों को अपना दुःख समझकर कष्ट झेलता है। अविद्या ही उसे शरीर से अपने को अभिन्न मानने पर विवश करती है। शरीर के दुःख से पुरुष स्वयं दुःख का अनुभव करने लगता है। यही बंधन है। जिस प्रकार माँ-बाप अपनी संतान के दुःख से स्वयं दुःखी हो जाते हैं और मालिक अपने नौकर के अपमानित होने से स्वयं को अपमानित महसूस करता है, उसी प्रकार पुरुष अज्ञानवश प्रकृति एवं शरीर के दुःखों को अपना दुःख मानकर बंधनग्रस्त है।

इस दुःखमयी बंधन का नाश तभी संभव है जब पुरुष वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति करता है। ईश्वरकृष्ण कहते हैं - "ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादियते बन्धः" अर्थात् ज्ञान से मोक्ष तथा इसके विपरीत अज्ञान से बंधन होता है। यह ज्ञान भी तीन प्रकार का होता है -

(1) 'नास्मि' - अर्थात् मुझमें किसी प्रकार क्रिया का संबंध नहीं है।

(2) 'नाऽहम्' - अर्थात् क्रिया का निषेध होने से मुझमें किसी प्रकार का कर्तृत्व नहीं है।

(3) 'नमे' - अर्थात् मैं असंग हूँ। संगहीन होने से मेरा किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस अभ्यास से धीरे-धीरे उसका मिथ्याज्ञान समाप्त हो जाता है और वह समझने लगता है कि, "मैं नश्वर प्रकृति से परे अनश्वर, शाश्वत और अमर सत्ता हूँ" और वह मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है।

वस्तुतः बंधनग्रस्त पुरुष (जीवात्मा) को मोक्ष दिलाना ही प्रकृति का उद्देश्य है, उसकी कृत-कृत्यता है। इसके पश्चात्

प्रकृति उस पुरुष के लिए कार्य करना बंद कर देती है। पुरुष सोचता है कि मैंने उसे देख लिया। अतः उसकी प्रकृति के विज्ञान में रुचि समाप्त हो जाती है और प्रकृति भी सोचती है कि मैं देख ली गई हूँ, अतः उस पुरुष विशेष के लिए कार्य करना बंद कर देती है।

सांख्यकारिका में इस संदर्भ में प्रकृति की उपमा एक सुंदर सुकुमारी से दी गई है। यथा—

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ॥ 61 ॥

अर्थात् प्रकृति से अधिक लज्जालु कोई नहीं है, जो कि मैं देख ली गई हूँ, यह सोच कर पुनः उस पुरुष के समक्ष नहीं आती। एक अन्य श्लोक में प्रकृति की तुलना रंगमंच पर नृत्य करने वाली नर्तकी से की गयी है, जो दर्शकों को अपना नृत्य दिखाकर रंगमंच से हट जाती है। इसी प्रकार प्रकृति अपने को प्रकाशित कर सृष्टिकार्य से विरक्त हो जाती है। यथा—

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः ॥ 59 ॥

मोक्ष :→ सांख्य दर्शन में मोक्ष को 'कैवल्य' शब्द से उल्लेखित किया गया है। मोक्ष एक निषेधात्मक अवस्था है। इस अवस्था में तीनों प्रकार के दुःखों का पूर्ण विनाश हो जाता है। पुरुष मूलतः शुद्ध चैतन्य एवं निर्गुण है, अतः मोक्ष की प्राप्ति होने पर वह किसी प्रकार के सुख या दुःख का अनुभव नहीं करता। यह केवल दुःखरहित अवस्था है- आनन्दमय नहीं।

मुक्ति के प्रकार :→ सांख्य दर्शन में मुक्ति दो प्रकार की बतायी गई है— जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति।

① जीवन मुक्ति → इसका अर्थ है, शरीर रहते हुए ही मोक्ष की प्राप्ति करना। दूसरे शब्दों में, जीवित-

अवस्था में ही मुक्त हो जाना। ऐसा व्यक्ति मृत्यु तक अपने कर्तव्य कर्मों का पालन करता है।

② विदेह मुक्ति → मृत्यु के पश्चात् मिलने वाली मुक्ति विदेह मुक्ति है।

'सांख्यकारिका' में कहा गया है कि, शरीर के नाश होने पर पुरुष (आत्मा) के 'ऐकान्तिक' (अवश्यमभावी) तथा 'आत्यान्तिक' (अविनाशी) दुःखत्रय का विनाश हो जाता है, इसी की शास्त्रीय संज्ञा विदेह मुक्ति है। यथा –

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।
ऐकान्तिकमात्यान्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति ॥68॥

इस प्रकार से विदेह मुक्ति में पुरुष (जीवात्मा) दोनों प्रकार के शरीर (स्थूल एवं सूक्ष्म) से स्वतंत्र हो जाता है। यही कैवल्य की स्थिति है। इसलिए विवेक ज्ञान को अत्यंत आवश्यक बताया है क्योंकि अज्ञान ही बंधन का मूल कारण है और विवेकज्ञान ही इस मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

अतः विवेक ज्ञान से पुरुष अपने को इंद्रिय, शरीर, मन, बुद्धि इत्यादि से सर्वथा भिन्न समझ लेता है तथा उसे यह ज्ञान हो जाता है कि आत्मा अनादि, अनंत और चैतन्यमय है। यह प्राप्ति 'अष्टांगसाधन' द्वारा होती है और यही मोक्ष का मार्ग भी है।

इस प्रकार से उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि बंधन एवं मोक्ष जीवात्मा का होता है। न प्रकृति का और न ही पुरुष का। संसरण लिङ्ग करता है, जो जीव का सूक्ष्मतम भाग है। अतः बंधन एवं मोक्ष शरीर का होता है, जो जीवात्मा से सम्बद्ध होता है। इस प्रकार से मानव जीवन का प्रमुख प्रयोजन दुःखत्रय की पीड़ा से सदा के लिए मुक्त होना है, जिसके लिए उसे तत्वज्ञान की आवश्यकता होती है। अर्थात् उसे व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ का सम्यक् ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है तभी वह बंधन से मुक्त हो, कैवल्य की प्राप्ति कर सकेगा।

—×—